International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(3): 47-50

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(3): 47-50
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 28-02-2015
Accepted: 30-03-2015

कु. मेघा मेहता
शोधकर्त्री, महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

Correspondence
कु. मेघा मेहता
शोधकर्त्री, महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त और प्रासङ्गिकता : एक समीक्षात्मक अध्ययन

कु. मेघा मेहता

सारांशिका :
ज्योतिष शास्त्र का विकास मानव जीवन के विकास के साथ ही हुआ। मनुष्य स्वभावतः जिज्ञासु होता है। जैसे– ये तारे ग्रह–नक्षत्र क्या वस्तु हैं? तारे टूटकर क्यों गिरते हैं? सूर्य प्रतिदिन पूर्व दिशा से ही क्यों उदित होता है तथा ऋतुओं का आगमन क्रमानुसार ही क्यों होता है?
ज्योतिष के सतत् विकास का ही परिणाम है कि तीन स्कन्ध के बाद ज्योतिष के दो स्कन्ध और हो गये। इस प्रकार पञ्चस्कन्धात्मक ज्योतिष के अन्तर्गत होरा, सिद्धान्त, संहिता, प्रश्न और शकुन आते हैं।
भारतीय ज्योतिष की प्राचीनता किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखती। यदि पक्षपात त्याग कर विचार किया जाय तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अन्य शास्त्रों के समान ज्योतिषशास्त्र के आविष्कर्ता भारतीय ही थे। भारतीय ऋषियों ने योगाभ्यास द्वारा अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा से शरीर के भीतर ही सौरमण्डल के दर्शन किये और स्वनिरीक्षण कर आकाशीय सौर मण्डल का विश्लेषण किया।
वैदिक काल से ही ज्योतिष विद्यमान है। सर्वविदित है कि इस संसार में जन्म लेने वाले जीवों का सब प्रकार से कल्याण मार्ग प्रदर्शक वेद है। समग्र भारतीय विज्ञान वेद में उपलब्ध है।
प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय ज्योतिष के प्रमुख सिद्धान्त और वर्तमान काल में उनकी प्रासङ्गिकता का एक समीक्षात्मक अध्ययन करना है।

कूट शब्द : ज्योतिष, सिद्धान्त, आचार्य, वेद, मुहूर्त।

1. प्रस्तावना :
आकाशीय घटनाएँ मानव को आकर्षित करती रही हैं। ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति इसी आकर्षण का परिणाम है। ज्योतिषशास्त्र की व्युत्पत्ति **"ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्"**[1] से की गई है अर्थात् सूर्यादि ग्रह और काल का बोध कराने वाला शास्त्र ज्योतिषशास्त्र कहलाता है। इसके अन्तर्गत ग्रह, नक्षत्र, ग्रहाचार, उदय–अस्त, धूमकेतु ग्रहों का परिभ्रमण, ग्रहण, ग्रहों की स्थिति और उनका मानवजीवन पर प्रभाव आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है।
भारतीय ऋषियों ने योगाभ्यास द्वारा अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा से शरीर के भीतर ही सौरमण्डल के दर्शन किये। **"यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे"** सिद्धान्त भारतीय दर्शन में प्राचीन काल से ही प्रचलित है[2] और इसी के अनुसार स्वनिरीक्षण कर आकाशीय सौर–मण्डल की व्यवस्था ऋषियों ने की है।
यद्यपि भारतीय परम्परा में **"अपौरुषेय वेदाः"** सिद्धान्त प्रचलित है। ऋग्वेद हमारा प्राचीन ग्रन्थ है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वान् बेवर सर विलियम जोन्स, व्हिटनी, काल बुक, डेविस मैक्समूलर, थीबो और भारतीय विद्वानों में कृष्ण शास्त्री बालकृष्ण दीक्षित, सुधारक द्विवेदी, डॉ.आर.श्याम शास्त्री आदि विद्वानों ने ऋग्वेद का काल ईसा पूर्व चार हजार वर्ष स्वीकृत किया है।[3] वेदों में खगोल, भूगोल, कृषिकर्म, राजधर्म आदि विभिन्न विषयों का प्रतिपादन है।

2. शोध उद्देश्य एवं प्रविधि :
प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय ज्योतिष के प्रमुख सिद्धान्त और वर्तमान काल में उनकी प्रासङ्गिकता का एक समीक्षात्मक अध्ययन करना है। प्रस्तुत शोध–पत्र प्राचीन ग्रंथ, वेद, शास्त्र, पुराण, समीक्षात्मक पुस्तकें, शोध–पत्र एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख व रचनाओं में निहित/समाहित विचारों, दृष्टि तथा सुझावों पर आधारित है।

3. पूर्ववत् शोध का अध्ययन :
अलबरूनी ने लिखा है– 'ज्योतिशास्त्र में हिन्दू लोग संसार की सभी जातियों से बढ़कर हैं। मैंने अनेक भाषाओं के अंकों के नाम सीखे हैं, पर किसी जाति में भी हजार से आगे की संख्या के लिये मुझे कोई

नाम नहीं मिला। हिन्दुओं में अठारह अंकों तक की संख्या के लिये नाम हैं, जिनमें अंतिम संख्या का नाम परार्द्धा बताया गया है।[4]
फ्रांसीसी पर्यटक फ्राक्वीस ने भारतीय ज्योतिष की प्रशंसा करते हुए कहा है कि ''भारतीय अपनी गणना द्वारा चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण की बिल्कुल ठीक भविष्यवाणी करते हैं। इनका ज्योतिष ज्ञान प्राचीन और मौलिक है।[5]
कॉण्ट ऑर्मस्टर्जन के अनुसार ''वैली द्वारा किये गये गणित से यह प्रतीत होता है कि ईसवी सन् 3000 वर्ष पूर्व में ही भारतीयों ने ज्योतिषशास्त्र और भूमितिशास्त्र में अच्छी पारदर्शिता प्राप्त कर ली थी।[6]
श्री लोकमान्य तिळक ने अपनी पुस्तक ओरायन में बताया है कि भारत का नक्षत्र ज्ञान, जिसका कि वेदों में वर्णन आता है, ईसवी सन् से कम से कम पाँच हजार वर्ष पहले का है।[7]

4. वेदांगों में ज्योतिष का स्थान :

वेद के अति गम्भीर अर्थ का बोधन करने के लिये ही वेदांग ग्रन्थ प्रवृत्त हुए हैं। वेदांग शब्द से ही स्पष्ट होता है कि वेदचतुष्टय का वेदांगों से घनिष्ठ संबंध है। वेदांगों को षडंग भी कहते हैं। इसमें प्रत्येक अंग का अपना स्वतन्त्र वैशिट्य है, पाणिनयी शिक्षा में वेद पुरुष के अंगों को वेदांग ही कहा गया है। यथा–

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुः निरूक्तं श्रोत्रमुच्यते।
षिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साण्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।[8]

अर्थात्– वेद के पैर छन्द हैं, कल्प हाथ हैं, ज्योतिष नेत्र हैं, निरुक्त श्रोत्र (कर्ण) हैं, शिक्षा नासिका और व्याकरण मुख है। इस कारण अंगों सहित अधीत वेद से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।
यह तो स्पष्ट है कि वेदों के अर्थ बोध के लिये षड्वेदांगों की रचना हुई है, उनमें ज्योतिष को वेद पुरुष का चक्षु माना है। (ज्योतिषामयनं चक्षुः)
कल्पसूत्र, निरुक्त और व्याकरण में भी ज्योतिषचर्चा प्राप्त होती है। आश्वलायन सूत्र में ''श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रवणकर्मः'', ''सीमान्तोन्नयनं – यदा पुसां नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात्।'' इत्यादि अनेक वाक्य विभिन्न कार्यों के विभिन्न मुहूर्तों के लिये आये हैं। पारस्कर सूत्र में विवाह के नक्षत्रों का वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है ''त्रिषु त्रिषु उत्तरादिषु स्वाती मृगशिरसि रोहिण्याम्।'' अर्थात् उत्तरफाल्गुनी हस्तचित्रा, उत्तराषाढ़ा श्रवण, घनिष्ठा उत्तराभाद्रपदा, रेवती और अश्विनी विवाह नक्षत्र बताये गये हैं।
वेदांगज्योतिष की रचना चाहे जब हुई हो, किन्तु शंकरबालकृष्ण दीक्षित ने सप्रमाण स्पष्ट किया है कि 'वेदांगज्योतिष' गर्ग और पराशर की संहिताओं से प्राचीन है।[9]
वेदांगज्योतिष में पांच वर्षों के युग का उल्लेख है–

पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्ष प्रजापतिम्।।[10]

वेदांगज्योतिषपद्धति में सूर्य और चन्द्रमा की गति सर्वदा एक रूप मानी गई है। इसी को अन्य ज्योतिष ग्रन्थों में मध्यम गति कहते हैं।[11]
वेदांगज्योतिष में मास अमान्त माना गया है। सम्प्रति ज्योतिष ग्रन्थों में ''अमावास्याद्वयवर्तीकाल'' अमान्त मास या चान्द्रमास माना जाता है।[12]
वेदांगज्योतिष में मेषादि राशियों के न होते हुए भी सौर मास है। प्रत्यक्ष 'सूर्यमास' शब्द भी आया है।[13]

5. भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त :

सिद्धान्त शब्द का अर्थ है प्रामाणिक तथ्य या मानी हुई सच्चाई।[14] भारतीय ज्योतिष का मुख्य प्रयोजन आत्मकल्याण के साथ लोक–व्यवहार को सम्पन्न करना रहा है। लोक–व्यवहार के निर्वाह के लिये ज्योतिष के क्रियात्मक दो सिद्धान्त हैं– फलित और गणित। वराहमिहिर की पञ्चसिद्धान्तिका में 18 अध्याय और कुल 442 श्लोक हैं इसमें पांच सिद्धान्तों का वर्णन है–

"पौलिषरोमकवासिष्ठसौरपैतामहास्तु पञ्चसिद्धान्ताः।"[15]

5.1 पितामह सिद्धान्त[16] : पितामाह सिद्धान्त के मूल तत्त्वों का वर्णन पञ्चसिद्धान्तिका के 12वें अध्याय में है। इस अध्याय में केवल पाँच आर्यायें हैं।
ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने पितामह सिद्धान्त के मूल तत्वों को ही आधार माना है। पितामह सिद्धान्त में सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त अन्य ग्रहों का गणित नहीं आया है।

5.2 वसिष्ठ सिद्धान्त[17] : पितामह सिद्धान्त की अपेक्षा यह संशोधित और परिवर्द्धित रूप में है। इसमें केवल 13 श्लोक हैं, सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त अन्य ग्रहों का गणित इसमें नहीं है।

5.3 रोमक सिद्धान्त[18] : पञ्च सिद्धान्तिका के प्रथम अध्याय के 15वें श्लोक में रोमक सिद्धान्त के युग का वर्णन है। एक युग भी सूर्य और चन्द्रमा का युग कहा गया है।

5.4 पौलिश सिद्धान्त[19] : पञ्च सिद्धान्तिका का बहुत–सा भाग पौलिश सिद्धान्त के वर्णन से सम्बन्ध रखता है। प्रथमाध्याय की 10वीं आर्या में कहा गया है कि रोमक सिद्धान्त का अहर्गण पौलिश अहर्गण के आसपास होता है।

5.5 सूर्य सिद्धान्त[20] : इसके कर्ता कोई सूर्य नाम के ऋषि माने जाते हैं। इसमें आयी हुई कथा के अनुसार इसका रचनाकाल त्रेतायुग का आरम्भिक भाग बताया गया है, परन्तु उपलब्ध सूर्य सिद्धान्त इतना प्राचीन नहीं प्रतीत होता। पाश्चात्य विद्वानों से सूर्य सिद्धान्त का परीक्षण कर इसका रचनाकाल ई.पू.180 या ई.100 बताया है। इसमें युगादि से अहर्गण लाकर मध्यम ग्रह सिद्ध किये गये हैं और आगे संस्कार देकर स्पष्ट विधि प्रतिपादित की है। इसके आरम्भ में ग्रहों की गति सिद्ध करते हुए लिखा है–

पश्चात् व्रजन्तोऽतिजवान्नक्षत्रैः सततः ग्रहाः।
जीयमानास्तु लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगाः।।
प्राग्गातित्वमतस्तेषां भगणैः प्रत्यहं गतिः।
परिणाहवषाद्विन्नः तद्वषाद्भानि भुञ्जते।।

5.6 फलित सिद्धान्त :

फलित ज्योतिष पुनर्जन्म की अवधारणा को स्वीकार करता है। अस्यवामस्य सूक्त में स्पष्ट शब्दों में पुनर्जन्म का उल्लेख प्राप्त होता है–

स सघ्रचीः स विषूचीर्वसानः आवरीवर्ति भुवनेषु अन्तः।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तबहुप्रजाः निऋतिमाविवेष।।[21]

इस अध्याय में पूर्वजन्मकृत पाप से सन्तान हानि का उल्लेख प्राप्त होता है। यथा–

पुत्रस्थानगते राहौ कुजेनापि निरीक्षते।
कुजक्षेत्रगते वापि सर्पषापात्सुतक्षयः।।[22]

महर्षि पराशर ने अवतारवाद को भी फलितज्योतिष में स्वीकार करते हुए कहा है–

अवताराण्यनेकानि ह्यजस्य परमात्मनः।
जीवानां कर्मफलदो ग्रहरूपी जनार्दनः।।[23]

ग्रहों के फल परिपाक काल का अध्ययन फलित ज्योतिष के अन्तर्गत किया जाता है। पराशरादि आचार्यों ने फलित चिन्तन के लिये जन्म पत्रिका के षोडश वर्गों का उल्लेख किया है।
ग्रहों की उच्च नीच राशि में स्थिति का फलित ज्योतिष में महत्वपूर्ण स्थान है, ये जातक के जीवन पर गहरा प्रभाव डालती है। ग्रहों की उच्च नीच राशियां इस प्रकार हैं–

अजो वृषो मृगः कन्या कुलीरझषतौलिकाः।
सूर्यादीनं क्रमादेतास्तुण्गसंज्ञा प्रकीर्त्तिताः।।
दिग्गुणाष्टयमा भागा तिथिभूतर्क्षनखा समा।
स्वोच्चात्सप्तमभं नीचं पूर्वोक्तांषैः प्रकीर्तितम्।।[24]

मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन, तुला राशियों में 10, 3, 28, 15, 5, 27, 20 अंश सूर्यादि ग्रहों के उच्चांश होते हैं और अपनी उच्च राशि से सातवीं राशि में उतने ही अंश तक ग्रह नीच होते हैं।

तालिका क्र.1 – स्पष्टार्थ चक्रम्

सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ग्रहाः
मेष	वृषभ	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला	उच्चराशि अंश
10	3	28	15	5	27	20	
तुला	वृश्चिक	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष	नीचराशि अंश
10	3	28	15	5	27	20	

6. फलितज्योतिष के प्रतिनिधि आचार्य और उनके सिद्धान्त :
फलितज्योतिष के प्रमुख आचार्यों और उनके ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार है–

6.1 वराहमिहिर[25] : वह इस युग के प्रथम अद्वितीय ज्योतिर्विद हुए, इन्होंने इस विज्ञान को क्रमबद्ध किया तथा अपनी प्रतिभा द्वारा अनेक नवीन विशेषताओं का समावेश किया। इनका जन्म ईसवी सन् 485 में हुआ था।

6.2 कल्याण वर्मा[26] : इनका समय ईसवी सन् 578 माना जाता है। इन्होंने यवनों के होराशास्त्र का सार संकलित कर सारावली जातक ग्रन्थ की रचना की है। यह सारावली वराहमिहिर के बृहज्जातक से भी बड़ी है, जातकशास्त्र की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

6.3 चन्द्रसेन[27] : इनका रचा गया केवलज्ञानहोरा नामक महत्त्वपूर्ण विशालकाय ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ कल्याण वर्मा के पीछे का रचा गया प्रतीत होता है, इसके प्रकरण सारावली से मिलते–जुलते हैं, पर दक्षिण में रचना होने के कारण कर्णाटक प्रदेश के ज्योतिष का पूर्ण प्रभाव है।

6.4 श्रीपति[28] : यह अपने समय के अद्वितीय ज्योतिर्विद् थे। इनके पाटीगणित, बीजगणित और सिद्धान्तशेखर नाम के गणित, ज्योतिष के ग्रन्थ तथा श्रीपतिपद्धति, रत्नावली, रत्नसार, रत्नमाल ये फलित ज्योतिष के ग्रन्थ हैं। इनके पाटीगणित के ऊपर सिंहतिलक नामक जैनाचार्य की एक 'तिलक' नामक टीका है।

6.5 भास्कराचार्य[29] : वराहमहिर और ब्रह्मगुप्त के बाद इनके समान प्रभावशाली, सर्वगुणसम्पन्न दूसरा ज्योतिर्विद् नहीं हुआ। इनका जन्म ईसवी सन् 1114 में विज्जडविड नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता क ानाम महेश्वर उपाध्याय था।
ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त और पृथूदक स्वामी के भाष्य को मूल मानकर इन्होंने अपना सिद्धान्तशिरोमणि बनाया है तथा आर्यभट्ट, लल्ल, ब्रह्मगुप्त आदि के मतों की समालोचना की है।

6.6 बल्लालसेन[30] : ये मिथिला के महाराजा लक्ष्मण सेन के पुत्र थे। इन्हें ज्योतिषशास्त्र से बहुत प्रेम था। इन्होंने राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद शक 1090 में संहितारूप अद्भुतसागर नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ में गर्ग, वृद्धगर्ग, वराह, पाराशर, दवेल, वसन्तराज, कश्यप, यवनेश्वर, मयूरचित्र, ऋषिपुत्र, राजपुत्र, महबलभद्र, पुलिश सूर्यसिद्धान्त, विष्णुचन्द्र और प्रभाकर आदि के वचनों का संग्रह है।

6.7 नरचन्द्र उपाध्याय[31] : यह कासद्रुहगच्छ के सिंहसूरि के शिष्य थे। इन्होंने ज्योतिषशास्त्र के अनेक ग्रन्थों की रचना की है। वर्तमान में इनके बेड़ा जातक वृत्ति, प्रश्नशतक, प्रश्नचतुर्विंशतिका, जनसमुद्र सटीक, लग्नविचार, ज्योतिप्रकाश उपलब्ध है।

6.8 ढुण्ढिराज[32] : यह पार्थपुरा के रहनेवाले नृसिंह दैवज्ञ के पुत्र और ज्ञानराज के शिष्य थे। इनका समय शक 1463 है। इन्होंने 'जातकाभरण' नामक फलितज्योतिष का एक सुन्दर ग्रन्थ बनाया है जो फलित ज्योतिष में अपने ढंग का निराला है, जन्मपत्री का फलादेश सुंदर ढंग से बताया गया है।

6.9 सुधाकर द्ववेदी[33] : यह ज्योतिष ज्ञान के सिवा अन्य विषयों के भी अद्वितीय विद्वान् थे। फ्रेंच, अंग्रेजी, मराठी, हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओं के साहित्य के ज्ञाता थे। वर्तमान ज्योतिषशास्त्र के ये उद्धारक हैं। इन्होंने प्राचीन जटिल गणित ज्योतिष विषयक ग्रन्थों को भाष्य, उपपत्ति, टीका आदि लिखकर प्रकाशित किया।

7. ज्योतिषशास्त्र की प्रासङ्गिकता :
ज्योतिषशास्त्र का प्रयोजन और प्रासंगिकता वैदिक काल से वर्तमान काल तक स्वयं सिद्ध है। वेदांगज्योतिष में ज्योतिष के प्रयोजन को सिद्ध करते हुए कहा है–

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः
कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधान शास्त्रं
यो ज्योतिषं वेद स वेद याज्ञान्।।[34]

अर्थात्– वेदों को प्रकट करने का उद्देश्य यज्ञ है। यज्ञादि सब समुचित समय में सम्पन्न किये जाते हैं। इसलिये यज्ञ क्रियाएं शुद्ध कालगणना पर आधारित हैं। काल विधानशास्त्र को ही ज्योतिष कहते हैं। इस प्रकार कह सकते हैं कि जो ज्योतिष को सम्यक् जानता है वही वेदार्थ रूप यज्ञ को जानता है।
भारतीय संस्कृति में सम्पादित होने वाले यज्ञ, व्रत, षोडशकर्म, अध्ययन, संक्रान्ति का पुण्यकाल, मुहूर्त आदि पर अवलम्बित है और मुहूर्त का निर्णय ज्योतिषशास्त्र से होता है।
यदि ज्योतिष ज्ञान नहीं होता तो वेद की प्राचीनता सिद्ध नहीं की जा सकती थी। लोकमान्य बालगंगाधर तिळक ने वेदों में प्रतिपादित नक्षत्र अयन और ऋतु आदि के आधार पर ही वेदों का काल निर्धारित किया है। ज्योतिषशास्त्र समस्त मानव जीवन को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। मनुष्य का व्यावहारिक कार्य इस शास्त्र के सहयोग से सुगम हो जाता है।[35]
ज्योतिषशास्त्र की प्रशंसा करते हुए वराहमिहिर कहते हैं–

वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहाः।
अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम्।।[36]

अर्थात्– वन में रहने वाले ममत्त्वरहित और किसी से कुछ लेने की इच्छा न रखने वाले पुरुष भी ग्रह नक्षत्र आदि की गति और उनके प्रभाव को देवज्ञों से पूछते हैं।

8. उपसंहार :

ज्योतिषशास्त्र और ज्योतिर्विज्ञान में सूक्ष्म अन्तर है। विज्ञान भौतिक पदार्थों और पिण्डों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। विज्ञान ज्ञान का साधरणीकरण करके सार्वजनिक बनाता है। शास्त्र दृश्य अदृश्य एवं पिण्डादि के भीतर दैवत अंश को पहचानता है। वह पिण्डादि तथा पदार्थों के उत्पत्तिनिमित्त को प्रकट करता है। भारतीय चिन्तन में अदृश्य के प्रभावों को स्थाई मानकर शास्त्रद्वारा विधान किया गया है। इस प्रकार अदृश्य के रहस्य को तत्त्वतः जानने का प्रयास ज्योतिषशास्त्र का प्रयोजन है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ज्योतिषशास्त्र मानव जीवन का अभिन्न अंग है तथा जन्म से लेकर मृत्यु तक यहां तक कि मृत्यु के पश्चात् की गति का चिन्तन भी इस शास्त्र द्वारा किया जाना इसकी प्रासङ्गिकता को सिद्ध करता है।

ज्योतिषशास्त्र को आत्म कल्याण का हेतु भी प्राचीन आचार्यों ने कहा है–

न सांवत्सर पाठी च नरकेषुपद्यते।
ब्रह्मलोकप्रतिष्ठां च लभते दैवचिन्तकः।।[37]

अर्थात्– ज्योतिषशास्त्र को पढ़ने और पढ़ाने वाला मनुष्य नरक में नहीं जाता तथा ज्योतिषशास्त्र का चिन्तन करने वाला पुरुष ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

ज्योतिषशास्त्र जीवन का अभिन्न अंग है। व्यवहार के लिये अत्यन्त उपयोगी दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, अयन ऋतु, वर्ष एवं उत्सवतिथि आदि का ज्ञान इसी शास्त्र से होता है। यदि मानव समाज को इसका ज्ञान न हो तो धार्मिक उत्सव, सामाजिक त्यौहार आदि कृत्य भी यथासमय नहीं हो सकेंगे।

9. सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. नेमीचन्द शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ 01
2. वही, पृष्ठ 29
3. गणक तरंगिणी, पृष्ठ 07
4. नेमीचन्द शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ 24
5. वही, पृष्ठ 24
6. वही, पृष्ठ 25
7. वही, पृष्ठ 26
8. पाणिनीय षिक्षा, ष्लोक 41,42
9. महाभारतीय ज्योतिष, पृष्ठ 65
10. वेदांग ज्योतिष, ष्लोक 01
11. महाभारतीय ज्योतिष, पृष्ठ 65
12. वही, पृष्ठ 66
13. वही, पृष्ठ 66
14. वामन षिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी –कोष
15. श्री षिवनाथ झारखण्डी, भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ 209
16. नेमीचन्द शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ 77
17. वही, पृष्ठ 78
18. श्री गोरखप्रसाद, भारतीय ज्योतिष का इतिहास, पृष्ठ 105
19. वही, पृष्ठ 108
20. नेमीचन्द शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ 79
21. वैदिक साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 73
22. बृहत्पाराषरहोराषास्त्रम्, 33.08
23. वही, पृष्ठ 01.25
24. वही, पृष्ठ 03.38,39
25. बृहत्संहिता, डॉ. सुरेषचन्द्र लिखित भूमिका, पृष्ठ 10
26. सारावली, मुरलीधर चतुर्वेदी लिखित भूमिका, पृष्ठ 04
27. नेमीचन्द शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ 98
28. गणक तरंगिणी, पृष्ठ 28
29. श्री गोरखप्रसाद, भारतीय ज्योतिष का इतिहास, पृष्ठ 191
30. गणक तरंगिणी, पृष्ठ 40
31. नेमीचन्द शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ 107
32. गणक तरंगिणी, पृष्ठ 263
33. श्री षिवनाथ झारखण्डी, भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ 418
34. वेदांग ज्योतिष, ष्लोक 03
35. नेमीचन्द शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, पृष्ठ 40
36. बृहत्संहिता, 02.23
37. बृहत्संहिता, 02.28